राम अनंत अनंत गुन

डॉ0 सहृदय नारायण उपाध्याय,
B22/3, आवासीय परिसर भारत ओवान रिफाइनरी लि0 बीना, जिला–सागर (म0प्र0)
फोन : 7860039496

धर्म ग्रन्थों का गहन अध्ययन न करने पर व्यक्ति थोड़ा भ्रम या संदेह की स्थिति में आ जाता है, जैसे श्रीरामचरितमानस के अनुसार एक दिन माता कौसल्या ने बालक राम को दो स्थानों पर देखा तो उन्हें भी भ्रम हो गया था। वास्तव में हमारा मानना है कि श्रीरामचरितमानस को पढ़कर ही आप सारे संदेह दूर कर सकते हैं, अन्यथा तो उलझते ही जायेंगे। तुलसीदास जी का स्पष्ट कहना है कि राम अनंत हैं उनके गुण अनंत हैं। मन व बुद्धि स्वस्थ रखेंगे तो न आपको आश्चर्य होगा न संदेह। यदि भगवान को आप अनंत नहीं मानते हैं तो भ्रम हो जाएगा। वही राम हैं जो माता कौसल्या का नैवेद्य पा रहे है और वही पालने में सो रहे हैं।

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा। मतिभ्रम मोर कि आन बिसेषा।।

(1/201/7)

गोस्वामी जी ने भगवान राम को समझाने के लिए तीन शब्दों का प्रयोग किया है जिनसे बहुत कुछ संदेह नष्ट होता है –

रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ बिश्रामा।।

(1/35/7)

फिर शिव–पार्वती संवाद में लिखते हैं –

गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुर हित दनुज बिमोहनसीला।।

(1/113/8)

मानस के प्रारम्भ में ही लिखते हैं –

राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं जिन्ह कें बिमल बिचार।।

(1/33)

इन तीन शब्दों–चरित्र, लीला और कथा का अर्थ एवं रहस्य समझने से सारे संदेह दूर हो जाते हैं। आचरण से सम्बन्धित होता है चरित्र जो जीवन का द्योतक है और लीला का अर्थ रंगमंच पर किए गए अभिनय से है। यदि लीला एवं चरित्र में कोई भिन्नता नहीं है तो दोनों को समझना अत्यंत सरल है, यदि भिन्नता है तो उसका समाधान देने का माध्यम है – कथा।

'मानस' में रामकथा का स्वरूप गोस्वामी जी राम की लीला एवं चरित्र से उत्पन्न होने वाले भेद को मोह के रूप में वर्णन करते हैं और फिर कथा के माध्यम से उस मोह से छूटने का उपाय भी बताते हैं।, उत्तरकांड में काकभुसुंडिजी अपना संस्मरण गरुड़ जी को सुनाते हुए कहते हैं कि राजा दशरथ जी के आँगन में काक के रूप में काकभुसुंडिजी भगवान राम के सानिध्य का आनंद ले रहे हैं, उनसे क्रीडा कर रहे हैं। ऐसा वे पाँच वर्षों तक हर जन्म में करते हैं –

लरिकाई जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ।
जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाइ करि खाउँ॥

(7 / 75 क)

एक बार भगवान के हाथ में मालपुआ देखकर काकभुसुंडिजी अति प्रसन्न हुए कि आज तो मालपुए का प्रसाद मिलेगा, पर यह तो अजीब बात हो गई कि प्रभु मुझे पास आने का संकेत देने लगे। मैंने भी सोचा अहोभाग्य! आज तो प्रभु स्वयं ही अपने हाथों से मुझे खिलाएँगे। मैं बड़े उत्साह से और निकट चला गया, पर भगवान ने देने की जगह मालपुए वाला हाथ ही पीछे कर लिया और दूर चले गए। फिर मैं लौटने लगा तो फिर से मालपुआ दिखा दिया। मानो देने ही वाले हैं। मैं फिर गया तो फिर वही लीला हुई। अब काकभुसुंडिजी के मन में क्षोभ उत्पन्न हुआ – सोचा यह क्या है, बार बार मुझे निमंत्रित करते हैं और फिर अनादर करते हैं। वे रूठ गए तो प्रभु रोने लगे। यह देखकर क्रोध कुछ कम हुआ कि मुझे बुलाने के लिए रो रहे हैं। मैं पास चला गया। प्रभु मुस्कुराने लगे। मैंने सोचा चरण छू लूँ, पर फिर यह लीला हुई –

आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं॥

(7 / 77 क)

तब काकभुसुंडि के मन में एक संशय उत्पन्न हो गया। संशय तो मन में वैसे ही उत्पन्न होते ही रहते हैं। ये अनेक प्रकार के हो सकते है – 1. अज्ञान जन्य 2. भाव जन्य या 3. प्रेम जन्य। इन सबमें अज्ञान जन्य सबसे दुखदाई है, क्योंकि वह व्यक्ति को विनाश की ओर ले जाता है, जैसे रावण के मन में एक क्षण को आया कि राम मनुष्य हैं या भगवान हैं, तो वह प्रबल मोह में फँस कर उबर नहीं सका। भक्तों के जीवन में संशय प्रेम जन्य आता है, हालाँकि रावण महापंडित था फिर भी उसके ज्ञान के ऊपर अभिमान रूपी अज्ञान हावी हो गया था। इसी कारण रावण कहाँ मानता था कि कोई भगवान भी है, अपितु सबके ऊपर मैं ही हूँ। विभीषण जी को ज्ञान था और जब वे रावण के दरबार से चले तो उद्‌घोष करते हैं –

रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥

(5 / 41)

उन्हीं ज्ञानी विभीषण के मन में प्रभु को रणांगण में देखकर प्रेमाधिक्य के कारण यह संदेह जन्म लेता है –

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषनु भयउ अधीरा॥

(6/80/1)

गोस्वामीजी स्पष्ट करते हैं कि जो लोग पढ़ या सुन रहे हों वे समझ लें कि यह संशय अज्ञान जन्य नहीं, बल्कि प्रेम जन्य है –

अधिक प्रीति मन भा संदेहा। बंदि चरन कह सहित सनेहा॥

(6/80/2)

यह संशय भी तो एक नए रस का सृजन करता है। **'मानस'** में गरुड़जी के भी मोह ग्रस्त होने का प्रसंग आ गया। उन्हें बताते हैं – यह मोह भी उन्हीं की कृपा से आता है, यह उनकी लीला ही है और अंत में यह भक्ति रस की वृद्धि ही करता है। वे कहते है –

हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या॥
ताते नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर॥

(7/79/2–3)

जो संसारी हैं वे अविद्या माया के कारण प्रभु चरित्र समझने में सक्षम नहीं हैं और मोह में फँस जाते हैं, पर इससे भक्त में भाव की वृद्धि होती है।

काकभुसुंडि न जाने कितनी बार भगवान की लीला में शामिल हो चुके हैं, पर इसी बार वे सोचते हैं कि क्या ईश्वर इतना कंजूस हो सकता है जो मालपुआ न दे सके। वे कहते हैं कि शायद इस भ्रम में मैं मान बैठा था कि क्या ये ईश्वर हैं? फिर एक नई लीला प्रारंभ हुई –

तब मैं भाग चलेउँ उरगारी। राम गहन कहँ भुजा पसारी॥

(7/79/7)

अब प्रभु तो कर रहे थे लीला और मैं उन्हें चरित्र की कसौटी पर कसने लगा –

प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह।
कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह॥

(7/77)

हम जानते हैं कि प्रभु बहुत उदार चरित्र के हैं। इसलिए विभीषण को राज्य दें तो कोई आश्चर्य नहीं, क्योंकि यहाँ उनकी लीला एवं चरित्र दोनों ही समान हैं। मालपुआ में लीला अलग तथा चरित्र है अलग। काकभुसुंडि जी कहते हैं कि यह तो मेरी भूल थी कि जो दोनों में अन्तर नहीं जान पाया। इसी तरह भगवान शंकर के साथ आती हुई सतीजी भी चरित्र एवं लीला को जान नहीं पाईं, क्योंकि प्रभु को जब दंडक वन में

देखा, सीताजी के वियोग में विलाप करते हुए देखा यह तो लीला हो रही थी। शंकरजी स्वयं लीला की बात कर रहे हैं पर सती सोचती हैं –

ब्रह्म जो ब्यापक बिरज अज अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर जाहि न जानत बेद॥

(1 / 50)

शंकर जी ने बहुत समझाया पर सती नहीं समझीं, क्योंकि जब लीला एवं चरित्र में सामंजस्य नहीं बैठता हो तब कथा ही उसका निराकरण कर सकती है। पर सतीजी ने कथा तो ध्यान से सुनी नहीं थी। इसीलिए उन्हें बात समझ में नहीं आई और अनर्थ हो गया। अगर कथा सुनी होती तो चरित्र तथा लीला का सामंजस्य सतीजी ने कर लिया होता, पर कथा के अभाव में वह मोह का शिकार हो गईं।

गरुड़ जी लंका के रणांगण में जब नागपाश में प्रभु को बँधा हुआ देखते हैं तो स्वयं मोह पाश में बँध जाते हैं –

भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥

(7 / 58)

नारद जी ने गरुड़ को भगवान श्रीराम के पास भेजा था, जिससे वे नागपाश काट दें। वे जब नागपाश काट कर वापस आए तो नारद जी को लगा वह स्वयं मोह आबद्ध हो गए, अतः उन्होंने निराकरण के लिए उन्हें ब्रह्मा जी के पास भेजा। वे चाहते तो स्वयं संशय दूर कर सकते थे। पर प्रत्येक–श्रोता अलग स्तर का होता है। गोस्वामी जी एक विशेष बात कहते हैं कि कथा श्रवण वही कर सकता है जो मन, बुद्धि और चित्त में स्थित हो अन्यथा अहंकार में स्थित होकर तो कोई कथा सुन ही नहीं सकता। गरुड़ जी के साथ इसी का संकेत प्राप्त हो रहा था, इसीलिए नारद जी स्वयं कथा न सुनाकर कहते हैं कि भगवान की माया बड़ी प्रबल है। गरुड़ जी ब्रह्मा जी के पास पहुँच गए। ब्रह्मा जी कहने लगे –

बैनतेय संकर पहिं जाहू। तात अनत पूछहु जनि काहू॥

(7 / 60 / 7)

सचमुच भगवान की माया प्रबल है –

हरि माया कर अमित प्रभावा। बिपुल बार जेहिं मोहि नचावा॥

(7 / 60 / 4)

अतः तुम शंकर जी के पास जाओ। उन्होंने भी कह दिया –

मिलेहु गरुड़ मारग महँ मोही। कवन भाँति समझावौं तोही॥
तबहिं होइ सब संसय भंगा। जब बहु काल करिअ सतसंगा॥

(7 / 61 / 3–4)

तुम काकभुसुंडि के पास सत्संग करो। आप देखिए तीन–तीन उच्च श्रेणी के कथावाचक– नारद, ब्रह्मा जी और शंकर जी, कोई भी गरुड़ को कथा नहीं सुनाता। ये सभी लोग अनुपम कथावाचक हैं। राम कथा का उत्तर यही है कि गरुड़ जी में अभी तक अभिमान शून्यता नहीं आई जो कि कथा सुनाने की प्रथम शर्त है। अभिमान युक्त होकर कोई भी कथा हृदयंगम नहीं कर सकता, उसे पचा नहीं सकता है, अतः कथा पचाने के लिए योग मुक्त (अहंकार मुक्त) होना परम आवश्यक है। सब जानते हैं कि दौड़ने से भूख लगती है। सब गरुड़ जी को दौड़ा रहे हैं जिससे इस व्यायाम से अहंकार पच जाए तथा राम कथा की भूख लग जाए। गरुड़ जी को भगवान के समीपस्थ होने का अभिमान तो था ही क्योंकि नारद जी तथा ब्रह्मा जी को वे प्रणाम नहीं करते हैं। उनसे अपने आप को श्रेष्ठ समझते हैं। नारद जी ने सोचा होगा कि मैं एक मुख वाला हूँ, शायद इसलिए उसे श्रद्धा न हो, तो चलो चार मुख वाले के पास जाओ। चार मुख वाले ने देखा यहाँ भी नहीं तो पाँच मुख वाले के पास जाओ। पर शंकर जी तो अनोखे हैं। उन्होंने सोचा अगर सिर से भावना बनेगी तो उन्हें रावण के पास भेजना पड़ेगा, अतः अब इस क्रम को काट दिया। जो जगह दौड़ाने से गरुड़ जी में एक अंतर आ गया। शंकर जी बोले –

तेहिं मम पद सादर सिरु नावा। पुनि आपन संदेह सुनावा।।

(7/61/1)

पार्वती जी बोलीं – महाराज जी आप तो किसी भी भाषा में रामचरित व कथा सुना सकते थे भले ही (समझे खग खगही की भाषा) गरुड़ जी खग थे वे भी समझ सकते थे। कोई और बात रही होगी तब भगवान शंकर कहने लगे –

होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना।।
ताते उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपाँ मरमु मैं पावा।।

(7/62/7–8)

इसीलिए शिवजी कहते हैं कि मैंने उसे कौए के पास भेज दिया। मानो राजा को प्रजा के पास भेज दिया। जब उसके चरणों में बैठ कर राम कथा सुनेंगे तो अहंकार तिरोहित हो जाएगा और वह धन्य हो जाएगा। यही मुख्य बात थी। कोई और कथा सुना भी देता तो उन्हें पचती नहीं। बीमारी तो जस की तस बनी रहती अर्थात कथा सुनने के लिए अन्तःकरण से अहंकार मिटा देना अत्यावश्यक है। भगवान राम भी जब वन में लक्ष्मण जी के पूछने पर आध्यात्मिक विवेचना करते हैं तो पहले ही कहते हैं –

थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चित लाई।।

(3/15/1)

उन्होंने भी अहंकार को एक तरफ रखने को कहा है क्योंकि हम जानते हैं कि मन प्रधान व्यक्ति रस प्रधान होता है, उसे स्वादिष्ट भोजन, संगीत इत्यादि सब चाहिए। अतएव कथा श्रवण में उसके केन्द्र में मन और कान होंगे। गोस्वामी जी कहते हैं मन प्रधान को मनोरंजन चाहिए तो राम कथा सुनने वाले को

मनोरंजन भी प्रदान करती है –

बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुन ग्रामा। श्रवन सुखद अरु मन अभिरामा।।

(7 / 53 / 4)

विषयी की कक्षा मन की कक्षा है। बहुत अधिक लोग जीवन भर मन के स्तर में ही कथा सुनते रहते हैं। कई लोगों को कथा बड़ी मधुर लगती है। वे सुनकर भाव विभोर हो जाते हैं। कथा मधुर या कंठ मधुर लगने में बड़ा अंतर है। विषयी को तो मधुर कंठ से ही मधुर कथा का अनुभव होता है। वह तो उसका मनोरंजन ही है, पर शंकर जी कहते हैं –

करि पूजा समेत अनुरागा। मधुर बचन तब बोलेउ कागा।।

(7 / 63 / 8)

मधुर स्वर में कौआ बोला, यह सुनकर पार्वती जी बोलीं कि कौए का मधुर स्वर नहीं होता, तब शंकर जी कहते हैं राम कथा की यही तो विशेषता है कि कौए के कंठ से भी कथा मधुर लगती है। यहाँ कंठ की नहीं, कथा की विशेषता है। यह बारीक अंतर बहुत कम व्यक्ति ही समझते हैं। कथा जनता का मनोरंजन करती है, पर इसको जन प्रियता की कसौटी नहीं माना जा सकता। वास्तव में राम कथा की कसौटी तो बुद्धि ही है –

जो प्रबंध बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कबि करहीं।।

(1 / 14 / 8)

इसीलिए गोस्वामी जी ने एक ही पंक्ति में अपनी बात इस प्रकार से कह दी –

बुध बिश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष बिभंजनि।।

(1 / 31 / 5)

बुद्धिमान एवं साधक इसे इसी दृष्टि से देखते हैं कि यह विवेक और शास्त्र–सम्मत है या नहीं। प्रारंभ में गुसाई जी ने जो 'मानस' सर का रूपक दिया है उसमें संकेत यही है कि इस कथा से हर स्तर का व्यक्ति अपना अभीष्ट पा लेगा –

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। बेद पुरान उदधि घन साधू।।
बरसहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी।।

(1 / 36 / 3–4)

बरसात का जल पात्र की भिन्नता से गंदा या स्वच्छ रहता है। यदि जमीन पर गिरेगा तो गंदा होगा ही, पर पक्के, अच्छे व गहरे बर्तन में गिरने से गंदा नहीं होगा। इसी तरह राम कथा आप मन के स्तर से सुने जा रहे हैं तो मन से आने वाला आनंद आपको विषयानन्द की ओर ले जाएगा, पर यदि आप विषयी वृत्ति से धीरे–धीरे ऊपर उठ रहे हैं तो निश्चय ही आप कथा को सही रूप में ले रहे हैं। प्रारंभ में मन को अच्छा लगने

का अर्थ गोस्वामी जी का यही है कि जैसे छोटे बच्चे स्कूल जाने के लिए मिठाई से प्रलोभित किए जाते हैं उसी तरह 'मानस' की बात है। शनैः शनैः अभ्यास से कथा सुमति की गहराई में बैठाई जाती है। बुद्धि की पवित्रता हो तथा हृदय की गहराई हो, तब रामकथा सुनेंगे तो आप उसे सच्चे अर्थ में ग्रहण कर सकेंगे। इस प्रकार से यद्यपि कान और मन के माध्यम से सुनने की क्रिया आरम्भ होगी, पर अंत में मन अन्य रसों की खोज बंद कर राम कथा रस में निमग्न हो जाएगा। इसका संकेत हमें पुष्प वाटिका में मिलता है जब एक सखी लौट कर सीता जी के पास पुनः आ जाती है और कहती है –

स्याम गौर किमि कहौं बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥

(1/229/2)

आपने नेत्र से, मन से कुछ देखा, आपको बड़ा आनंद आया यहाँ तक ठीक है, पर जब उसका वर्णन करने के लिए कह दिया जाए तो वाणी के माध्यम से व्यक्त करने के लिए बुद्धि की आवश्यकता होगी, क्योंकि शब्दों का चयन बुद्धि ही करेगी। सखी का अभिप्राय यह है कि मैं बोलती तो पर उस रूप सौंदर्य का दर्शन कर मेरा मन और आँखें तो वहीं रह गईं; अतः बुद्धि को कौन बताए, अतः वाणी कैसे वर्णन करे। कथा श्रवण का फल भी यही है कि मन उधर ही रह जाता है। फिर सांसारिक सौंदर्य व शृंगार या रस उसे अच्छा नहीं लगता है। तब बुद्धि उस दिव्य रस को हृदय की गहराई में ले जाकर संचित कर देती है। अन्तःकरण को रसाप्लावित करने में प्रथम कड़ी वक्ता ही होता है उसके विषय में गोस्वामी जी का कहना है –

जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥

(1/38/1)

यहाँ गाने का व्यापक अर्थ लेना चाहिए यद्यपि भगवान के गुणगान में संगीत और वाद्य यंत्रों का प्रयोग एक श्रेष्ठ परम्परा है। इससे इस विद्या को भी धन्यता प्राप्त होती है, पर राम कथा में गाने का व्यापक अर्थ है। हनुमान जी से प्रथम मिलन में प्रभु कहते हैं –

आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥

(4/2/4)

वहाँ श्रीराम जी के पास कोई संगीत वाद्य नहीं था, अतः इस शब्द का अर्थ और ही है। काकभुशुंडि जी भी कथा सुनाते हैं तो लिखा है – **कागभुसुंडि गरुड़ प्रति गावा** वास्तव में गाना तो व्यक्ति अकेले भी गाता रहता है, पर कथन के लिए श्रोता चाहिए ही। हनुमान जी से बाद में प्रभु ने पूछा कि मैंने अपना चरित्र तुम्हें गाकर सुनाया तुम्हें आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि मैं गा तो रहा नहीं था केवल कह ही तो रहा था। हनुमान जी बोले कि आपका ही चरित्र ऐसा दिव्य और मधुर है जो स्वयं संगीत बन जाता है। राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त जी लिखते हैं –

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है। कोई कवि बन जाए सहज संभाव्य है॥

भक्त इस चरित्र को केवल एक ही राग में गाते हैं वह है अनुराग राग। काकभुशुंडि जी तो 'मानस' वक्ता के रूप में इसी राग में गायन करते हैं –

प्रथमहिं अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी।।

(7/64/7)

अतः कथा गायन के लिए वक्ता को अनुराग के साथ रामायण की दृष्टि में आदि से अंत तक सुसंगत होना चाहिए, जिससे समाज का भला हो या व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास हो। सिद्धांत के प्रतिकूल कोई बात न हो। उदाहरण के लिए रावण व कुम्भकर्ण दोनों में ऐसा लगता है कि बहुत भक्ति भावना है आप 'मानस' में पाते हैं दूसरे ही क्षण रावण की अहंकार में तथा कुम्भकर्ण की महिष व मदिरा देखकर सात्विकता चौपट हो जाती है यही संकेत है कि वक्ता अनर्गल व्याख्या न करे। श्रोता भी इसी रूप में अर्थ ग्रहण करे। जब ठीक सुनने और कहने की वृत्ति आ जाती है तो व्यक्ति विषयी या मनोरंजन प्रिय न रहकर साधना की दिशा में अग्रसर होता है। ऐसे श्रोता को अब कथा में जिस मधुरता का अनुभव होता है वह बुद्धि द्वारा ही होता है तथा बुद्धि स्तर से भी ऊपर उठकर श्रोता चित्त के स्तर से कथन श्रवन करने लगता है।

भगवान की कथा अयोध्या, चित्रकूट, मिथिला, दंडक वन और यहाँ तक कि लंका में भी होती है। अलग–अलग भूमि पर श्रोता भी अलग–अलग हैं। देखने से ऐसा लगता है कि सब एक ही भूमि पर बैठे हैं। बात शरीर से बैठने की नहीं, अन्तःकरण से कथा में रहने की है। महत्त्व इस बात का है कि आप क्या किस प्रकार सुन रहे हैं अर्थात मन से, बुद्धि, चित्त या अहंकार से? अयोध्या बुद्धि की भूमि है। चित्रकूट चित्त की भूमि है। लंका अहंकार की भूमि है। मिथिला मन की भूमि है। तो हमें अयोध्या का निर्माण अपने अन्दर करना है **'संत सभा अनुपम अवध सकल सुमंगल मूल'** सबसे उत्तम भूमि तो चित्रकूट की है जो दिव्य है, रामकथा की मन्दाकिनी निरंतर प्रवाहित होती रहे और जिसके प्रेम वन में नित्य सीताराम जी विहार करते रहे –

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन सिय रघुबीर बिहारु।।

(1/31)

भगवान की कथा का विस्तार उनके गुणों के अनुसार असीमित है, जिसकी कोई सीमा नहीं है, अतः मनुष्य को उनके अनंत गुणों को सुनकर अपने अवगुणों को दूर करने का मार्ग अपनाना चाहिए। संपूर्ण श्रीरामचरितमानस में अन्वेषण करने पर आपको अपने अवगुणों का चित्र किसी न किसी प्रसंग में मिल ही जाएगा और वहीं से उसके निराकरण का रास्ता भी दिखाई देगा। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के चरित्र के अनंत गुणों का श्रवण–मनन करके यदि हम–आप केवल एक दुर्गुण ही अपने जीवन से बाहर कर देते हैं तो समझिये कि श्रीरामचरितमानस–अध्ययन का हमें बड़ा लाभ हो रहा है।

जनकसुता जग जननि 'जानकी'

श्री देवेन्द्र शर्मा, गुरुग्राम। फोन : 9810199441

जिस प्रकार से यह कहा जाता है कि – **'हरि अनंत हरि कथा अनंता'** हैं, उसी प्रकार से **'अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि'**, इन आदिशक्ति महादेवी श्रीजानकी जी के नाम–रूप–लीला और महिमा भी अनन्त हैं। वेदों में इन भगवती आदिशक्ति महादेवी का सूक्ष्म परिचय इस प्रकार मिलता है –

यस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया। यस्या अन्तो न लभ्यते तस्मादुच्यते अनन्ता। यस्या लक्ष्यं नोपलक्ष्यते तस्मादुच्यते अलक्ष्या। यस्या जननं नोपलभ्यते तस्यादुच्यते अजा। एकैव सर्वत्र वर्तते तस्मादुच्यते एका। एकैव विश्वरूपिणी तस्मादुच्यते नैका। अत एवोच्यते अज्ञेयानन्तालक्ष्याजैका नैकेति।।

(श्रीदेव्यथर्वशीर्षम् / 23)

अर्थात– जिनके स्वरूप को श्रीब्रह्मादि देवता भी नहीं जानते, अतः वे 'अज्ञेया' कहलाती हैं। जिनका अन्त नहीं मिला, इसलिए वे 'अनन्ता' कही जाती हैं। जिनका लक्ष्य किसी को भी नहीं दीखता, इसलिए उन्हें 'अलक्ष्या' कहते हैं, जिनके जन्म के बारे में कोई नहीं जानता, इस कारण से वे महादेवी 'अजा' नाम से जानी जाती हैं। जो अकेली ही सर्वत्र विराजमान हैं, अतः वे जगजननी 'एका' कही जाती हैं। जो अकेली ही विश्वरूप में सजी हुई हैं, इसलिए उन्हें 'नैका' कहते हैं, इसीलिए– वे (आदिशक्ति महादेवी) अज्ञेया, अनन्ता, अलक्ष्या, अजा, एका और नैका कहलाती हैं। ऐसी अनन्त महिमा वाली आदि शक्ति महादेवी, देवताओं को अपना परिचय देते हुए कहती हैं कि –

अहं ब्रह्मस्वरूपिणी। मत्तः प्रकृतिपुरुषात्मकं जगत्। शून्यं चाशून्यं च।।2।। अहमानन्दानानन्दौ। अहं विज्ञानाविज्ञाने। अहं ब्रह्माब्रह्मणी वेदितव्ये। अहं पञ्चभूतान्यपञ्चभूतानि। अहमखिलं जगत्।।3।। वेदोऽहमवेदोऽहम्। विद्याहमविद्याहम्। अजाहमनजाहम्। अधश्चोर्ध्वं च तिर्यक्चाहम्।।4।। अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि। अहमादित्यैरुत विश्वदेवैः। अहं मित्रावरुणावुभौ बिभर्मि। अहमिन्द्राग्नी अहमश्विनावुभौ।।5।। अहं सोमं त्वष्टारं पूषणं भगं दधामि। अहं विष्णुमुरुक्रमं ब्रह्माणमुत प्रजापतिं दधामि।।6।। अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये यजमानाय सुन्वते। अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्। अहं सुवे पितरमस्य मूर्धन्मम योनिरप्स्वन्तः समुद्रे। य एवं वेद। स दैवीं सम्पदमाप्नोति।।7।।

अर्थात्– वे भगवती आदिशक्ति महादेवी कहती हैं कि – मैं ही ब्रह्मस्वरूप हूँ, मुझसे ही प्रकृति–पुरुषात्मक सद्रूप और असद्रूप जगत उत्पन्न हुआ है।।2।। मैं ही आनन्द और अनानन्दरूपा हूँ। विज्ञान और अविज्ञान रूपा भी मैं ही हूँ। अवश्य जानने योग्य ब्रह्म और अब्रह्म मैं ही हूँ। पंचीकृत और अपंचीकृत महाभूत भी मैं ही हूँ। यह सारा दृश्य जगत मैं हूँ (अर्थात्– मेरा ही स्वरूप है) ।।3।। वेद और अवेद भी मैं हूँ। अजा और अनजा (प्रकृति और उससे भिन्न) भी मैं हूँ। नीचे, ऊपर और अगल–बगल भी मैं ही हूँ।।4।। मैं रुद्रों और वसुओं के रूपों में संचार करती हूँ। मैं आदित्यों और विश्वेदेवों के रूप में भ्रमण करती हूँ। मैं मित्र और वरुण दोनों का, इन्द्र एवं अग्नि का और दोनों अश्विनीकुमारों का भरण–पोषण करती हूँ।।5।। मैं सोम, त्वष्टा, पूषा और भग को धारण करती हूँ। त्रैलोक्य को आक्रान्त करने के लिए विस्तीर्ण पादक्षेप करने वाले विष्णु, ब्रह्मदेव और प्रजापति को भी मैं ही धारण करती हूँ।।6।। देवों को उत्तम हवि पहुँचाने वाले और सोमरस निकालने वाले यजमान के लिए हविर्द्रव्यों से युक्त धन धारण करती हूँ। मैं सम्पूर्ण जगत की ईश्वरी उपासकों को धन देने वाली (लक्ष्मीस्वरूपा), ब्रह्मरूप और यज्ञाहों में (यजन करने योग्य देवों में) प्रमुख हूँ। मैं आत्मस्वरूप पर आकाशादि का निर्माण करती हूँ। मेरा स्थान आत्मस्वरूप को धारण करने वाली बुद्धिवृत्ति में है। जो (आदिशक्ति महादेवी को) इस प्रकार जानता है, वह दैवी सम्पत्ति लाभ करता है।।7।। (श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्)

अब जिनको श्रीब्रह्मादि देवता भी नहीं जानते, उन आदिशक्ति–महादेवी की महिमा का गायन कैसे सम्भव हो सकता है? लेकिन भक्ति–मार्ग इस बात की आज्ञा देता है कि –

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ।।

(1/28/1)

अर्थात सभी प्रकार की स्थिति–परिस्थिति में, जिस किसी भी प्रकार हो, उपासक को चाहिए कि वह अपने अन्तःकरण चतुष्टय (अर्थात् मन–बुद्धि–चित–अहंकार) को पवित्र करने हेतु ईश्वर का गुणगान अवश्य करे, क्योंकि मन, बुद्धि के पवित्र हुए बिना भगवान की भक्ति नहीं हो सकती और जिसके बिना जीव परम कल्याण को प्राप्त नहीं हो सकता। इसीलिए प्रातः स्मरणीय गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी महाराज श्रीरामचरितमानस में लिखते हैं कि –

निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसीं कह्यो।
रघुबीर चरित अपार बारिधि पारु कबि कौनें लह्यो।।

(1/अन्तिम छन्द)

अर्थात् हे संसार के प्राणियो! श्रीरघुवीर जी के अनन्त गुणों, लीला–कथाओं के अथाह सागर का पार कौन कवि पा सकता है। मैंने तो अपनी गिरा (वाणी और मन–बुद्धि) को पवित्र करने के लिए जैसा भी मुझसे बन पाया है, श्रीभगवान के चरित को गाया है। (अब ये संसार के प्राणियों पर निर्भर करता है कि – कौन इससे लाभ उठा पाता है और कौन नहीं?)

श्रीगोस्वामी जी के उपर्युक्त आशीर्वाद की छत्र–छाया में, इस निवेदक का भी विश्वास है कि – **'निज गिरा पावनि करन कारन'** भगवती श्रीजानकी जी के प्राकट्य दिवस पर उनके गुणगान करने का यह विनम्र प्रयास अवश्य ही कल्याणकारी सिद्ध होगा।

ऐसा नियम है कि – जब–जब सर्वशक्तिमान करुणानिधान श्रीभगवान– **'भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि'** पृथ्वी पर अवतार लेते हैं, तब–तब उनकी लीलाओं में सहभागी होने के लिए आदिशक्ति भी किसी न किसी रूप में अवतार लेती हैं। महाराज मनु और महारानी शतरूपा जी की असाधारण तपस्या से प्रसन्न होकर जगदीश्वर ने आदिशक्ति सहित प्रकट होकर उन्हें अपने परम ऐश्वर्यमय मनोहर स्वरूप के दर्शन दिए और उनकी इच्छानुसार वरदान देते हुए कहा कि –

इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें।।
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता।।
आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया।।

(1/152/1–2 तथा 4)

अर्थात् अगले जन्म में, जब तुम दोनों राजा दशरथ और रानी कौसिल्या होओगे, तब मैं अपनी इच्छानुसार मनुष्य वेश बनाकर तुम्हारे घर में अवतार लूँगा। श्रीभगवान आगे कहते हैं कि मेरे साथ आदिशक्ति भी अवतरित होंगी और फिर श्रीभगवान ने आदिशक्ति का परिचय इस प्रकार दिया –

बाम भाग सोभित अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला।।
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी।।
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई।।

(1/148/2–4)

अर्थात् इन आदिशक्ति का ऐसा अद्भुत ऐश्वर्य विलास है कि इनके अंश मात्र से गुणों की खान, अनगिनत देवी–श्रीब्रह्माणी जी, श्री लक्ष्मीजी और श्रीपार्वती जी उत्पन्न होती हैं। जिनकी भ्रकुटि के संकेत मात्र से सृष्टि का विलय हो जाता है और सुन्दरता की अपार भण्डार ये श्रीभगवती आदिशक्ति सदैव ही श्रीभगवान के वाम भाग में सुशोभित होती हैं।

परमेश्वर श्रीभगवान के श्रीरामावतार में ये आदिशक्ति श्रीसीता जी के नाम से अवतरित हुईं और जानकी, जनकनन्दिनी, जनकपुत्री, श्रीरामवल्लभा, श्रीरामप्रिया आदि नामों से प्रसिद्ध हुईं। विशेष बात यह है कि इस अवतार में ये मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की भार्या बनीं और श्रीराम के मर्यादा पालन में पूरी मर्यादा में रहकर उनकी सहभागिनी रहीं। प्रस्तुत लेखन सेवा में परम करुणामयी भगवती श्रीसीता जी के ईश्वरी पक्ष की सेवा निवेदित है, जो भक्तों को निर्मल बुद्धि प्रदान करके उनके भगवत–मिलन और उनके मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करती हैं।

भगवान श्रीराम की अर्धांगिनी भगवती श्रीसीताजी के अन्य प्रचलित नामों में एक नाम है– जानकी। भक्ति के क्षेत्र में भगवती के इस 'जानकी' नाम की बड़ी ही महिमा बताई गई है, वैसे तो श्रीसीताजी का यह नाम महाराज श्रीजनक जी की पुत्री होने के कारण पड़ा, लेकिन विद्वान–भक्तगण इसका दूसरा कारण यह बताते हैं कि भगवान श्रीराम भगवती सीता को 'जानकी' नाम से ही सम्बोधित किया करते थे। श्रीरामचरितमानस में प्रातः स्मरणीय गोस्वामी श्रीतुलसीदास जी महाराज भगवती श्रीसीताजी की वन्दना में इनके नाम का प्रयोग करते हुए लिखते हैं –

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की।।
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।।

(1 / 18 / 7–8)

श्रीगोस्वामी जी उपर्युक्त पहली पंक्ति में **'जानकी'** और **'करुनानिधान'** इन दोनों शब्दों का प्रयोग इस प्रकार करते हैं कि भगवती श्रीसीताजी का पूरा परिचय ही हो जाता है। जो इस प्रकार है – महाराज श्रीजनक की पुत्री होने से श्रीसीता जी 'जानकी' कहलाईं। वास्तव में तो वे आदि–शक्ति जगदीश्वरी हैं और जगदीश्वर करुणानिधान भगवान श्रीराम को वे शाश्वत रूप में अतिशय प्रिय हैं। भगवान श्रीराम के द्वारा भगवती श्रीसीताजी को उनके 'जानकी' नाम से सम्बोधन करने के विषय में एक साधारण भाव यह भी है कि किसी भी स्त्री के साथ यदि उसके मायके से सम्बन्ध जोड़ कर व्यवहार किया जाए तो वह सहज प्रसन्नता का अनुभव करती है और श्रीसीताजी का यह 'जानकी' नाम तो सीधा उनके पिता महाराज श्रीजनक के नाम से सम्बन्ध रखता है, परन्तु यह भाव साधारण संसारी जनों को समझने–समझाने के लिए तो ठीक है, लेकिन, तत्वतः भगवान श्रीसीताराम जी के सम्बन्ध में यह भाव बहुत ही हल्का पड़ता है, क्योंकि इन दोनों के बीच तो सहज प्रेम और सहज प्रसन्नता का शाश्वत सम्बन्ध है।

भक्ति मार्ग में उपर्युक्त दूसरी पंक्ति का बड़ा महत्व है, जिसमें श्रीगोस्वामी जी भगवती श्रीजानकी के श्रीचरण कमलों की वन्दना में कहते हैं कि मैं (तुलसीदास) करुणानिधान भगवान श्रीराम की अतिशय प्रिया, करुणामयी भगवती श्रीजानकी जी के श्रीचरण कमलों की वन्दना करता हूँ, जिनकी कृपा से निर्मल मति (बुद्धि) प्राप्त होती है। विचारणीय है कि भक्ति पथ की यात्रा बिना निर्मल मति (बुद्धि) के हो ही नहीं सकती। श्रीभगवान स्वयं इस तथ्य की पुष्टि में कहते हैं कि –

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।।

(5 / 44 / 5)

निवेदन है कि मोटे तौर पर यह 'जानकी' शब्द –

ज + अ + न + क + ई = दो स्वरों और तीन व्यंजनों से मिलकर बना है। संस्कृत भाषा के शब्द कोश में, वैदिक दृष्टिकोण से, इन स्वरों ओर व्यंजनों को जो अर्थ मिलते हैं, वो इस प्रकार है –

ज – जनक, पिता, उत्पत्ति, जन्म, विजेता, कान्ति, प्रभा, विष्णु, विष तथा भूत–प्रेत–पिशाच।

अ – ब्रह्मा, विष्णु, शिव, प्रणव का प्रथम अक्षर, विश्व, वायु, वर्णमाला का प्रथम अक्षर / स्वर।

न – अभिभक्त, समरूप, वही, मोती, गणेश, दौलत, सम्पन्नता, रिक्त, खाली, पतला, फालतू, मंडल, युद्ध, नकारात्मकतका प्रतीक।

क – ब्रह्मा, विष्णु, कामदेव, अग्नि, वायु, यम, सूर्य, आत्मा, राजा या राजकुमार, गांठ या जोड़, मोर, पक्षी, मन, शरीर, समय, बादल, शब्द / ध्वनि, प्रसन्नता, हर्ष, आनन्द, पानी, सिर।

ई – शक्ति, (दुर्गा) का प्रतीक, चेतना, प्रत्यक्ष ज्ञान, अनुकम्पा, व्याप्त होना, चमकना, चाहना, कामना करना, गर्भवती होना, प्रार्थना करना, जाना, खिन्नता, पीड़ा, शोक, क्रोध, फेकना, खाना।

'जानकी' शब्द में प्रयुक्त उपर्युक्त स्वरों तथा व्यंजनों के अर्थों को भगवती श्रीजानकी जी (श्रीसीताजी) के 'जानकी' नाम और ईश्वरीय पक्ष के सन्दर्भ में विचार करें तो हम भगवती के इस नाम की महत्ता को इस प्रकार कह सकते हैं कि –

ज – जो जगत की उत्पत्ति का कारण, तेजोमयी प्रभा से युक्त हैं।

अ – जो अजा – अविनाशी हैं, भगवान श्रीब्रह्मा–श्रीविष्णु–श्रीमहेश के समान सर्वशक्तिमान और अविभक्त होने से वायु की तरह सारे जगत में समान रूप से व्याप्त हैं।

न – जो समस्त नकारात्मक शक्तियों को ही नकरात्मक (अर्थात् शमन) करने वाली हैं। भगवान श्रीगणेश की भाँति ऋद्धि–सिद्धि की समस्त सम्पदा प्रदान करने वाली हैं।

क – कामधेनु के समान भक्तों की समस्त मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाली, परमानन्द प्रदान करने वाली और जगत की आत्मा हैं।

इ – ईश्वरी, जो चराचर जगत को अपने गर्भ में धारण करने वाली समस्त प्राणियों की चेतना शक्ति होने से जगदीश्वरी कहलाती हैं। जो अनुकम्पा (करुणा) की मूर्ति और सर्व शोकहारिणी हैं।

(उन शरणदात्री, निर्मल बुद्धि की प्रदात्री, भगवती श्रीजानकी जी की मैं (तुलसीदास) शरण लेता हूँ)

भगवती श्रीसीताजी के 'जानकी' नाम से सम्बन्धित एक और महत्वपूर्ण भाव यह भी है कि जिस प्रकार श्रीभगवान के 'श्रीराम–नाम' में 'पंच–ब्रह्म' की उपस्थिति बताई गई है, उसी प्रकार से भगवती श्रीजानकी जी के इस नाम में प्रयुक्त स्वरों तथा व्यंजनों के उपर्युक्त अर्थों पर पुनः विचार करने पर हमें मिलता है कि भगवती के इस 'जानकी' नाम में भी 'पंच–ब्रह्म' विराजमान हैं –

ज – व्यंजन में भगवान श्रीविष्णु

अ – स्वर में भगवान श्रीशिव

न – व्यंजन में भगवान श्रीगणेश

क – व्यंजन में भगवान श्रीसूर्य और

ई – स्वर में भगवती श्रीदुर्गा।

अतः इस प्रकार से भगवान श्रीराम की अतिशय प्रिया, भक्तवत्सला श्रीजानकीजी को उनके इस नाम से स्मरण– प्रणाम करने पर तथा इस नाम से उनकी उपासना करने से पंच–ब्रह्म की उपासना स्वतः ही हो जाती है।

अतः पूर्ण श्रद्धा–विश्वास सहित प्रार्थना –

जनकसुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की।।
ताके जुग पद कमल मनावउँ। जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ।।

(1/18/7–8)

हम जो कहा यह कपि नहिं होई

हमारा देश संसार का सबसे बड़ा प्रजातंत्र है जिसमें शासक को चयनित करने की जिम्मेदारी जनता की है। अभी भी हमारे देश की पुरानी पीढ़ी के कई लोग अशिक्षित हैं, इस कारण वे चुनाव प्रक्रिया में सही भूमिका निभाने में असमर्थ होते हैं। वहीं दूसरी ओर गरीबी के कारण भी कुछ लोग लालचवश सही समय पर सही चयन नहीं कर पाते। चुनाव प्रक्रिया में 'लहर' का विशेष महत्व होता है। ऐसे लोग जो स्वयं उचित निर्णय लेने में सक्षम नहीं होते वे 'उस लहर' का सहारा लेते हैं जो उस समय प्रवाहित होती है। इसका प्रभाव आगामी लोक सभा चुनाव में पड़ने वाला है। इस संबंध में 'जनता का मूड' समझने के लिए श्रीरामचरितमानस के सुंदरकाण्ड में लंका–दहन के प्रसंग पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि जनता का मूड कब बदल जाए, समझ पाना अति दुष्कर है। रावण के दरबार में ले जाए गए श्री हनुमान की पूँछ में आग लगाने का निर्णय होते ही लंका निवासी आकर उनका अपमान करते हैं, यहाँ तक कि उनको लात भी मार देते हैं।

कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी।।

(5/25/6)

कुछ समय बाद जब उनकी पूँछ में आग लगा दी गई और नगर जलने लगा तब वही जनता जो श्री हनुमान जी का अपमान करके उनकी हँसी उड़ा रहे थे, वही लोग अब कहने लगे कि हमने तो पहले ही भविष्यवाणी कर दी थी कि यह कोई साधारण वानर नहीं है, यह तो छद्म वेषधारी निश्चित ही कोई न कोई देवता है।

हम जो कहा यह कपि नहिं होई। बानर रूप धरें सुर कोई।।

(5/26/4)

इस प्रकार से 'जनता का मूड' समझना अत्यन्त कठिन है। पर यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि जो पार्टी सुशासन के माध्यम से सम्पूर्ण समाज के हित में संलग्न है और भ्रष्ट नहीं है, तो उसकी ही विजय निश्चित करना जनता का दायित्व बनता है। इस लेख का उद्देश्य यह स्पष्ट करने का है कि श्रीरामचरितमानस के प्रसंगों में समाज से जुड़ी सभी समस्याओं पर विवेचना और समाधान उपलब्ध है।

अगुन अमान मातु पितु हीना

पं0 दिनेश चंद्र शर्मा, अध्यक्ष

श्रीरामचरितमानस एक ऐसा दिव्य ग्रन्थ है, जिसे पढ़ना–पढ़ाना, सुनना–सुनाना तथा श्रीराम के चरित्र का गुणगान करना प्राणी को अनायास ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। मानस रूपी गंगा भगवान शिव के हृदय से प्रकटी, जिसे पार्वती ने सुना। यही पार्वती जी पिछले जन्म में सती थीं। सती रूप में वे रामकथा नहीं सुन पायीं, किन्तु पार्वती जी बनकर उन्होंने रामकथा सुन ली। सती में तार्किक बुद्धि थी, किन्तु विश्वास का अभाव था। इस कारण वे रामकथा नहीं सुन सकीं। पार्वती के रूप में उनमें विश्वास का प्रादुर्भाव हो गया और परिणाम स्वरूप शिवजी ने उन्हें रामकथा सुनाई यथा –

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाषा।।

(1/35/11)

अतः कथा के सही स्वरूप को समझने के लिये बुद्धि के साथ–साथ श्रद्धा और विश्वास का होना भी परम आवश्यक है।

पार्वती जी के जन्म के पश्चात हिमाचल के घर में एक दिन नारद जी आते हैं, देवर्षि नारद सीताजी के जन्म के समय जनकपुर भी जाते हैं। उनका अभिप्राय है कि जहाँ श्रद्धा और भक्ति का उदय होता है, वहीं जाने में जीवन की सार्थकता है। हिमाचल और मैना ने देवर्षि का स्वागत किया और पार्वती को बुलाकर उनका हाथ दिखाकर कहा कि आप बताइए कि इसमें क्या–क्या दोष और गुण हैं। बड़े प्रसन्न होकर देवर्षि ने फल बताया और प्रशंसा करके कहा कि –

होइहि पूज्य सकल जग माहीं। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाहीं।।
एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा।।

(1/67/5–6)

हिमाचल तुम्हारी कन्या तो बहुत सुलक्षणा है लेकिन .....

सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी।

(1/67/7)

अब जो दो चार अवगुण हैं वे भी सुन लो। यद्यपि कहा तो था दो चार पर जब गिनवाने लगे तो बड़ी लम्बी सूची हो गई। नारद जी ने कहा कि यह कन्या तो बड़ी गुणी है, पर इसका जो पति होगा उसमें कुछ अवगुण भी होंगे –

अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना।।

(1/67/8)

जोगी जटिल अकाम मन नगन अमंगल बेष।
अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त असि रेख।।

(1/67)

देवर्षि नारद ने तो हस्तरेखा का फल बताया, परन्तु श्रद्धा के द्वारा जो तथ्य की व्याख्या होती है, उसका स्वरूप कुछ और होता है जबकि साधारण व्यक्ति उसका कुछ और ही अर्थ लेता है। मैना के रूप में जो बुद्धि थी, उसने तो सीधा–साधा अर्थ ले लिया कि मेरी कन्या के पति में ये–ये दोष होंगे और उन्होंने अपना सिर पीट लिया कि महाराज! आपने क्या फल बताया? कन्या के सौभाग्य का सबसे बड़ा लक्षण तो उसका पति ही है। आपने वर में इतने दोष बता दिये, तो अब क्या होगा? यह सोचकर मैना की आँखों में आँसू आ गये। इतना ही नहीं, पार्वती जी की आँखों में भी आँसू आ गये। पूछा गया कि दोनों ने एक ही अर्थ लिया। गोस्वामी जी ने एक वाक्य में अन्तर स्पष्ट कर दिया कि –

नारदहुँ यह भेदु न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना।।

(1/68/2)

दशा तो एक ही थी, पर समझ अलग–अलग। मैना सोचती हैं कि जब वर में इतने दोष हैं तो मेरी कन्या जीवन भर दुःखी रहेगी और पार्वती जी सोचती हैं कि यह तो बहुत अच्छा है। तथ्य यह है कि श्रद्धा से जब कोई देखता है तो उसको प्रतिकूलता में भी अनुकूलता की दृष्टि मिल ही जाती है। कथा का तत्व भी यही है। कथा केवल मंच पर बैठकर ही नहीं कही जाती है और मण्डप में बैठकर ही नहीं सुनी जाती है, वस्तुतः यह पूरा जीवन ही कथा वाचक का मंच है और अगर आप जीवन की सारी घटनाओं की सही–सही व्याख्या कर सकें, जैसा कि श्रद्धा से प्रेरित पार्वती जी ने किया तो आपको दुःख कम से कम होगा।

मैना सोच रही हैं कि अगुण वह है जिसमें गुण नहीं है और पार्वती रूपी श्रद्धा अर्थ लगा रही है कि –

महादेव अवगुन भवन बिष्नु सकल गुन धाम।।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम।।

(1/80)

पार्वती जी समझ रही थीं कि मुझमें तो आठ अवगुण हैं और शंकर जी में नौ अवगुण हैं तो हम दोनों के लिये इससे सार्थक विवाह नहीं हो सकता। इस प्रकार वे नारद जी की बात सुनकर प्रसन्न हो रही हैं। तात्विक दृष्टि से पार्वती जी की व्याख्या है कि गुण तो परिवर्तनशील हैं, यदि हम गुण के आधार पर किसी को स्वीकार करेंगे तो वहाँ निराशा अवश्यंभावी है। नारद जी कहते हैं कि जो वर मिलेगा वह अगुण होगा। पर श्रद्धा की व्याख्या है कि व्यक्ति तो अगुण हो ही नहीं सकता। इसका अभिप्रायः है कि जो गुणों से परे है वह अगुण है और गुणों से परे तो एकमात्र ईश्वर ही है, हमारे भगवान शिव ही हैं। इसलिए बड़ी प्रसन्न हो

रही हैं और आँसू आ रहे हैं, पर आनन्द के, पर मैना की आँखों में आँसू आ रहे हैं दुःख के।

अवगुन के पश्चात अमान शब्द है। मैना ने अमान शब्द का अर्थ लिया कि वर में स्वाभिमान बिल्कुल नहीं होगा। इसका अर्थ लेने में भी पार्वती जी की दृष्टि मैना से भिन्न है। वस्तुतः जिसने मान को जीत लिया, उसने तो संसार के सबसे बड़े अवगुण को जीत लिया। अभिमान शून्य होने के बाद यदि कहीं व्यक्ति में हीनता की भावना आ जाये, तो वह अवगुण है। वैसे दो प्रकार के व्यक्ति ही अभिमान शून्य होते हैं। एक तो वे लोग जो दीन–हीन, गये बीते हैं, जिनमें हर तरह से दरिद्रता की वृत्ति छायी हुई है। ऐसे व्यक्ति में अभिमान यदि किंचित मात्र भी होता है तो वह परिस्थिति के कारण दिखाई नहीं देता या फिर अभिमान रहित हो जाना तत्वज्ञ के लिये संभव है –

ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं।।

(3/15/7)

नारद जी ने कहा कि वर के माता पिता दोनों ही नहीं होंगे। पार्वती जी सोचने लगीं कि संसार में ऐसा कोई हो नहीं सकता जो माता–पिता रहित हो। पर जब ये कह रहे हैं कि वर के माता–पिता नहीं होंगे, तब तो वह अजन्मा ब्रह्म ही हो सकता है। इस प्रकार वे सारे लक्षण भगवान शिव में मिला रही हैं। नारद जी ने कहा कि निरन्तर उदासीन रहेगा। मैना ने अर्थ लिया कि उदासीन वृत्ति का होगा तो कन्या के प्रति ध्यान नहीं देगा, जबकि पार्वती जी ने इसका अर्थ यह लिया कि जो उदासीन है, उसको अपनी ओर आकृष्ट कर लेने में ही प्रेम की विजय है। इसलिये यह तो मेरी परीक्षा है। जो भगवान शिव उदासीन हैं, वे यदि मेरी ओर रागी बन जायें, तो उसी में मेरे स्नेह की विजय तथा मेरा सौभाग्य है।

तत्पश्चात नारद जी ने संशयछीना कहा अर्थात उनमें कोई संशय नहीं होगा। यहाँ संशय शब्द सशंक के अर्थ में प्रयोग किया गया। इसका अभिप्राय है कि समाज में व्यवहार करते समय व्यक्ति सावधान रहता है। सामाजिक मर्यादा के अनुकूल उसका व्यवहार होता है। अगर किसी व्यक्ति में पूर्ण निश्चिन्तता आ जाए कि मुझे समाज की कोई परवाह ही नहीं है तो ऐसे व्यक्ति द्वारा मर्यादा का उल्लंघन होना स्वाभाविक ही है। गोस्वामी तुलसीदास दोहावली में कहते हैं –

झूठे अघ सिय परिहरी, तुलसी साईं सशंक।

लोक मर्यादा का ध्यान रखने से व्यक्ति के जीवन में संयम तथा सावधानी आती है। मर्यादा का उदय होता है। जो संशय मुक्त होते हैं वे जड़ की तरह हैं, जैसे 'जड़ भरत'। जड़ में भला कैसा संशय? या आशंका रहित वह होता है जिसका ज्ञान इतना परिपूर्ण है, जिसका विश्वास इतना बड़ा है कि वह सर्वत्र ब्रह्म का ही साक्षात्कार कर रहा है। इस प्रकार पार्वती इस लक्षण को भी भगवान शिव में ही देख रही हैं।

नारद जी ने कहा कि दूल्हा योगी होगा। अब समस्या यह है कि विवाह तो भोगी के लिये और दूल्हा मिल गया जोगी, याद रखिये बिना योगी बने कोई भोगी भी नहीं हो सकता, क्यों? योग माने मन की

एकाग्रता और भोग में भी व्यक्ति के मन की एकाग्रता आवश्यक है। योगी शब्द सुनकर भले ही मैना को दुःख हो गया, पर पार्वती को नहीं हुआ क्योंकि वे जानती हैं कि शंकर जी योगी भी हैं और भोगी भी हैं। विवाह हो जाने के बाद की कथा इस प्रकार है –

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा।।

(1 / 103 / 5)

शिवजी का यह भोग विलास परोपकार के लिये है, क्योंकि उनके पुत्र षडानन ने तारक असुर का वध किया। उस असुर को वरदान था कि शिव पुत्र के अलावा उसे कोई मार नहीं सकता।

लोग इस प्रसंग से यह शिक्षा न ले लें कि शंकरजी भोगी हैं तो हमें भी ऐसे ही भोगी बनना है, इसलिये तुलसीदास जी ने तुरन्त सावधान भी कर दिया कि भगवान शंकर तथा भगवती पार्वती तो सारे जगत के माता–पिता हैं, उनके श्रृंगार का वर्णन मैं नहीं कर सकता –

जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगारु न कहउँ बखानी।।

(1 / 103 / 4)

नारद जी ने आगे कहा कि वह नंगा रहेगा। अब भला सोचिये कि कन्या के माता–पिता पर क्या प्रभाव पड़ेगा? जिस दूल्हे से अपनी पुत्री का विवाह करने जा रहे हैं, उसके पास पहनने के लिये कपड़े नहीं हैं, यह जानकर कौन माँ–बाप विवाह करेंगे? गोस्वामी जी ने शंकर स्वरूप को लेकर बहुत बढ़िया व्यंग्य किया है। किसी व्यक्ति ने शंकर जी के विषय में सुना कि बड़े उदार हैं, बड़े दानी हैं तो लगा शंकर जी की पूजा करने। एक दिन उसकी पूजा से प्रसन्न होकर शंकर जी प्रकट हो गये और कहा वरदान माँगो। अब समस्या यह है कि वह बोल ही नहीं रहा है चुप है। शंकर जी ने पूछा चुप क्यों हो? बोला महाराज! मैंने बुलाया तो आपसे कुछ माँगने के लिये था, पर आपको देखकर मुझे सोचना पड़ रहा है कि आपसे माँगू कि आपको दूँ। भगवान शंकर ने कहा संसार के दानी दान तो करते हैं, पर उनको यह चिन्ता अवश्य होती है कि अपने लिये कुछ बचा लें, पर जिसको अपने लिये कपड़ा तक न चाहिये, घर तक न चाहिये वह अपने लिये क्या रखेगा? वह तो देगा ही देगा। मुझे नग्न देखकर तुम्हारी इच्छा हो जाये कि वस्त्र आभूषण न माँगे जो वह स्वयं धारण नहीं करते, अतः इसके बदले यदि मुझसे भक्ति माँग लो, तो इससे बढ़कर तुम्हारा कोई सौभाग्य नहीं हो सकता। इस प्रकार भगवान शंकर के समग्र वेश की व्याख्या यद्यपि दो जनों ने की, पर पार्वती जी ने जो अर्थ लिया, उस अर्थ को नारद जी भी पूरी तरह समझ नहीं पाये थे –

नारदहूँ यह भेदु न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना।।

(1 / 68 / 2)

श्रद्धावृति का अभिप्राय है कि जहाँ ऐसी दृष्टि है कि प्रतिकूलता में भी शिव का दर्शन होता रहे, क्योंकि ऐसा तो हो नहीं सकता, जहाँ जीवन है, पर मृत्यु न हो अथवा जहाँ लाभ हो, पर हानि न हो। वस्तुतः यह

सृष्टि तो द्वन्द्व से ही बनी हुई है। क्या ऐसा संभव है कि कोई रात्रि को मिटा दे, क्योंकि सत्ता तो दोनों की ही रहेगी। रात भी रहेगी और दिन भी रहेगा। ऐसी स्थिति में अगर कोई अनुकूलता में ही शिव को देखेगा तो उसकी श्रद्धा नहीं टिकेगी। अगर धन मिल गया तो गद्गद हो रहे हैं कि शंकर जी बड़े अच्छे देवता हैं और यदि किसी की मृत्यु हो गयी तो बस हटाओ इनको। इनकी इतनी पूजा की, फिर भी मृत्यु हो गयी। लेकिन आप पहले से नहीं जानते थे कि मृत्यु के देवता भी हैं। अगर उन्होंने यह छिपाया होता, तब तो आप उलाहना देते, पर उनका तो परिचय यही कहकर दिया जाता है कि वे मृत्यु के देवता है। काकभुशुंडि जी के गुरु ने वन्दना करते हुए यही कहा – 'करालं महाकाल कालं कृपालं।' इसका अभिप्राय है कि हमें ऐसी दृष्टि मिल जाये कि भगवान की करालता में भी कृपालुता दिखायी दे। प्रतिकूलता में भी अनुकूलता दिखाई दे, तभी हमारी दृष्टि सार्थक होगी।

जननी सम जानहिं पर नारी

हमारी प्राचीन सभ्यता और सनातन धर्म में नारी का विशेष सम्मान था। हमारी मान्यता थी कि जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवताओं का वास रहता है, पर आज स्थिति भिन्न है। आए दिन हम समाचार सुनते–पढ़ते रहते हैं कि अमुक स्थान पर अमुक उम्र की नारी के साथ अशोभनीय घटना घटी। देश अभी निर्भयाकाण्ड भूला भी नहीं था कि नारी–अपमान की बुलंदशहर की दो घटनाओं ने पुनः समाज और शासन की भूमिका पर प्रश्न चिह्न लगा दिया। इस समस्या की जड़ में है समाज का गिरता हुआ नैतिक स्तर। आज से पचास वर्ष पहले पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा के लिए महापुरुषों और धार्मिक ग्रन्थों की सूक्तियाँ होती थीं। श्रीरामचरितमानस की चौपाइयाँ पाठ्यक्रम में रहती थीं। उनसे नागरिकों के मन में सद्भाव एवं सत्प्रेरणा जाग्रत होती थी, पर आज इसका अभाव है। इस प्रकार से अन्य कारणों के साथ–साथ नारी के प्रति अपमान की घटनाओं के लिए हमारी शिक्षा पद्धति भी जिम्मेवार है। श्रीरामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड में महर्षि वाल्मीकि और श्रीरामजी के संवाद की यह चौपाई, इस परिप्रेक्ष्य में उल्लेखनीय है।

जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी।।

(2 / 130 / 6)

अर्थात् जो पर स्त्री को माता के समान और पर धन को विष के समान समझे, हे राम जी उनके मन ही आपके लिए शुभ सदन हैं। यदि इस शिक्षा का अंशमात्र भी जीवन में उतार लें तो ऐसी अनहोनी घटनाएँ घटित नहीं होंगी। हम भौतिक प्रगति की चरम सीमा की ओर अग्रसित हैं, किन्तु लगभग उसी अनुपात में नैतिक मूल्यों का ह्रास हो रहा है, अतः नैतिक उत्थान हेतु हमें श्रीराम जी द्वारा आचरित आचरण को अपनाना होगा।

मनुआ चलो ओरछा धाम

पं0 राजेश तिवारी 'मक्खन', शिक्षक जिला परिषद इण्टर कॉलेज, भेल
2/5/28 बी.एच.ई.एल., झाँसी (उ0प्र0) 245120 फोन : 9451131195

पुष्य, नखत में पैदल चलकर आते हैं नर नारी।
सुनते राजा राम सभी की कहते महिमा भारी।।
लगती भारत भर में केवल यहीं सलामी न्यारी।
भूखी नहिं सो सकती कोई भक्त मंडली प्यारी।।
अपने–अपने हिय में ध्यावो, जो शोभा के धाम।
मनुआ चलो ओरछा धाम।।1।।

बैठे सुन्दर सिंहासन पर, हीरा दमक रहा है।
धनुष बाण है करकमलों में, चेहरा चमक रहा है।।
बाम भाग शोभित बैदेही, लघु भ्राता ललक रहा है।
दुष्ट दलन के काजै उनका, बाहू फरक रहा है।।
भरा हुआ दरबार देख लो, हैं दीनों के राम।
मनुआ चलो ओरछा धाम।।2।।

राज काज सब धाम ओरछा के दिन भर निपटाते।
मारुत सुत तब लाद पीठ पर रात अवध ले जाते।।
कनक भवन अरु धाम ओरछा दृश्य एक दिखलाते।
दूर दूर से दर्शन खातिर, लोग यहाँ पर आते।।
भव्य चतुर्भुज मंदिर से अब कोई नहीं है काम।
मनुआ चलो ओरछा धाम।।3।।

पाताली हनुमान के दर्शन, भक्ति भाव से करते।
ये ही हैं वो रामदूत जो लाद पीठ पर चलते।।
केवल सीता राम नाम वे रात दिना ही जपते।
जिनकी एक हुंकार मात्र से दुष्ट निशाचर कँपते।
उनके सुमरन मात्र से जन के सारे संकट कटते।।
इन्होंने ही प्रभु की सेवा हित रूप धरा अभिराम।।
मनुआ चलो ओरछा धाम।।4।।

दक्षिण दिश में वेदवती माँ वहती कलकल करती।
जीवन का उत्साह सहज ही मानव उर में भरती।।
कंचन घाट की देखो शोभा क्या कमनीय कसकतीं।
तट के तीर नीर अति निर्मल मीन किलोलें करतीं।।
सच्चे मन से नहा के बोलो जय जय सीताराम।
मनुआ चलो ओरछा धाम।।5।।

अमर उजाला 26 मार्च 2018

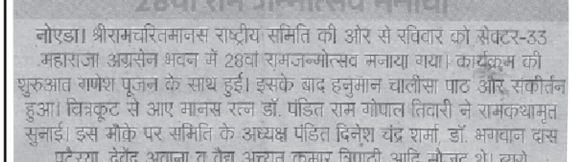

28वां राम जन्मोत्सव मनाया

नोएडा। श्रीरामचरितमानस राष्ट्रीय समिति की ओर से रविवार को सेक्टर-33 महाराजा अग्रसेन भवन में 28वां रामजन्मोत्सव मनाया गया। कार्यक्रम की शुरुआत गणेश पूजन के साथ हुई। इसके बाद हनुमान चालीसा पाठ और संकीर्तन हुआ। चित्रकूट से आए मानस रत्न डॉ. पंडित राम गोपाल तिवारी ने रामकथामृत सुनाई। इस मौके पर समिति के अध्यक्ष पंडित दिनेश चंद्र शर्मा, डॉ. भगवान दास पटैरया, देवेंद्र अवाना व वैद्य अच्युत कुमार त्रिपाठी आदि मौजूद थे। ब्यूरो